University Grants Commission, New Delhi Recognized Journal No. 41311
ISSN: Print: 2347-5021 www.research-chronicler.com ISSN: Online: 2347-503X

तत्व मीमांसाः जैन दर्शन के संदर्भ में

अंजिला कुमारी

शोध–छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारतीय दर्शन में तत्त्व संबंधी विचारों का अद्वितीय भंडार है। यों तो भारतीय दर्शन के संबंध में तरह–तरह से विद्वानों ने अध्ययन किया है। फिर भी इस संबंध में अध्ययन की आवश्यकता है। साधारणतया लोग भारतीय दर्शन के इतिहास में अध्यात्मवाद और अद्वैतवाद की बात करते हैं, लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय दर्शन में विभिन्न प्रकार की दार्शनिक विचारधाराएँ पायी जाती है।

वस्तुतः मध्ययुगीन भारतीय तर्कशास्त्र के मीमांसकों के इस क्षेत्र में जैन तर्कशास्त्रियों के कार्य को भी नकारा नहीं जा सकता है। इन लोगों ने तर्कशास्त्र को तत्त्वमीमांसा एवं धर्म से स्वतंत्र स्थान प्रदान किया है। डॉ॰ सतीशचन्द्र ने इस प्रसंग में कहा है कि ''लगभग 450 ई॰ के पूर्व बौद्ध तर्कशास्त्री दिग्नाग एवं जैन तर्कशास्त्री सिद्धसेन दिवाकर ने तर्कशास्त्र के सि़द्धांतों एवं धर्म तथा तत्त्वमीमांसा में अंतर बतलाते हुए मध्ययुगीन भारतीय तर्कशास्त्र की सही अर्थो में नींव रखी।[1] ये मध्ययुगीन तर्कशास्त्री तत्त्वमीमांसीय सिद्धांतों से बहुत अधिक संपर्क नहीं रखते थे जिसका प्राचीन तर्कशास्त्र में महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे ज्ञान के विश्लेषण को अधिक महत्व देते थे, विशेष नय में बैध ज्ञान के साधन और प्रमाण एवं उससे संबंधित अन्य समस्यायें।

जैन दर्शन सात तत्त्वों को मानते हैं 1. जीव 2. अजीव 3. आश्रव 4. बन्धन 5. संवर 6. निर्जरा 7. मोक्ष।

1. जीव :– जिन सत्ता को अन्य भारतीय दर्शन में आत्मा कहा गया है उसी का जैन–दर्शन में ''जीव'' की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः जीव और आत्मा एक ही सत्ता के दो भिन्न–भिन्न नाम है। जैनों के मतानुसार चेतन द्रव्य को जीव कहा गया है। चैतन्य जीव का मूल, लक्षण है। यह जीव में सर्वदा वर्त्तमान रहता है। जीव की परिभाषा इन शब्दों में दी गई है चेतना–लक्षणों जीवः[2]। जैनों का जीव सम्बन्धी यह विचार न्याय–वैशेषिक के आत्मा विचार से भिन्न है। न्याय वैशेषिक ने चैतन्य को आत्मा का आगन्तुक लक्षण माना है।
2. अजीवः– अजीव आस्तिकाय द्रव्य है इसमें चेतना नहीं होती है। ये पाँच प्रकार के होते हैं (क) धर्म (ख) अधर्म (ग) आकाश (घ) पुदगल (छ) काल
3. आश्रव :– जब कर्म पुदगल आत्मा की ओर प्रवाहित होते हैं तो उस अवस्था को 'आश्रव' कहा जाता है। 'आश्रव' जीव का स्वरुप ही नष्ट कर देता है ओर बन्धन में धकेल देता है। कहा गया है।
4. संवर– संवर आश्रय के विपरीत क्रिया है संवर का अर्थ होता है रोकना। मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्म पुदगलो में प्रवेश को बन्द करना तथा उनके होने वाले कारणों को रोकना अत्यन्त आवश्यक है। इसे रोकने को 'संवर' कहते हैं।
5. निर्जराः– मोक्ष प्राप्ति के लिए पहले से जीव में चिपके हुए पुदगलों का पूर्ण विनाश आवश्यक है और इसी विनाश को निर्जरा कहते हैं। पुराने पुदगल कणों को नाशकर मोक्ष को प्राप्त करता है। जैन के अनुसार निर्जरा के दो भेद है। 'भाव निर्जरा' और 'द्रव्य निर्जरा'।
6. बन्धनः– भारतीय दर्शन में बन्धन का अर्थ निरंतर जन्म ग्रहण करना तथा संसार के दुःखों को झेलना है। जैन–दर्शन भारतीय दर्शन में वर्णित बन्धन के सामान्य विचारों को शिरोधार्य करता है। फिर भी उसके

बन्धन–सम्बन्धी विचारों की विशिष्टता है। इस विशिष्टता का कारण जैनों का जगत और आत्मा के प्रति व्यक्तिगत विचार कहा जा सकता है। जीव अपने जब स्वाभाविक स्वरुप को भूल जाता है तो वह बन्धन में फंसता है बन्धन के कारण ही मनुष्यों को नाना–प्रकार के दुःखों को झेलना पड़ता है। जैन दर्शन में बन्धन के दो प्रकार है भाव बन्धन और द्रव्य बन्धन जैनों के अनुसार बन्धन का मूल कारण क्रोध लोभ मान, और माया इन कुप्रवृतियों के कारण अज्ञान है। इसके कारण बन्धन होता है।

7. मोक्षः– सभी भारतीय दार्शनिक मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य मानते है। जैन भी मोक्ष को चरमसत्ता के रुप में इसे स्वीकार करते हैं जैन–दर्शन में मोक्षानुभूति के लिए सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र तीनों को आवश्यक माना गया है। मोक्ष की प्राप्ति न सिर्फ सम्यक् ज्ञान से सम्भव है और न सिर्फ सम्यक दर्शन से सम्भव है, और न सिर्फ सम्यक चरित्र ही मोक्ष के लिये पर्याप्त है। मोक्ष की प्राप्ति तीनों के सम्मिलित सहयोग से ही सम्भव है। उमास्वामी के ये कथन इसके प्रमाण कहे जा सकते हैं– सम्यक्–दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्ष–मार्ग [3]:।

जैन–दर्शन में सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान, सम्यक चरित्र को ''त्रिरत्न'' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यही मोक्ष के मार्ग हैं।

जैन दार्शनिकों ने प्रमाण एवं नय दोनों को अपेक्षित महत्व प्रदान किया है। उमास्वामी ने ठीक ही पूर्णतः स्वीकार किया है ''प्रमाणान यौरिधगमः''[4]। इसका अर्थ है कि 'प्रमाण' एवं 'नय' वह आधार है जहाँ से कोई वस्तु एवं जीव को जानता है। नय की यह धारणा जैन तर्कशास्त्र एवं ज्ञानमीमांसा का एक अद्वितीय रुप है। लेकिन सभी भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों में प्रमाण की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया गया है। इसलिए यहाँ नय का सिद्धान्त ध्यान देने योग्य है। इस सिद्धान्त पर विचार विमर्श करने के पहले नय एवं निक्षेप के बीच अंतर बताना उचित होगा क्योंकि दोनों सापेक्ष विचार मालूम पड़ते है। इस संदर्भ में यह निष्कर्ष है कि निक्षेप अपने आप में एक वस्तु का अंश है। नय एक दृष्टिकोण हैं जिससे हम चीजों के संबंध में विचार देते हैं। यहाँ यह विशेष रुप से उल्लेखनीय है कि जैन दार्शनिक अनेकान्तवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं और यह मानते हैं कि वस्तुओं के असीमित पक्ष होते हैं और केवल वस्तुओं के सभी पक्ष को उसके सभी शाखाओं मे विभाजित कर जान सकता है। साधारणतः अपूर्ण जीवन आंशिक रुप से ही वस्तुओं को जानते हैं इसलिए नय सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। अतः नय सिद्धान्त अनेकान्तवाद के सिद्धान्त का तार्किक संगति माना जा सकता है।

जैन तत्त्वमीमांसा वस्तुवादी और सापेक्षतावादी बहुतत्ववाद जिसे है जिसे अनेकान्तवाद भी कहा जाता है। वस्तुतः जैन दर्शन का तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध है और यह दृष्टिकोण वैशेषिक दर्शन के तत्त्वमीमांसीस दृष्टिकोण से मिलता–जुलता है। तत्त्वमीमांसा प्राचीन काल से लेकर नवीन जीवन दर्शन में समाहित है और इसलिए आज भी यह उतना ही महत्वपूर्ण है जिसका तुलनात्मक दृष्टि से अवलोकन करने की चेष्टा की गयी है। पुनः भारत मे प्राचीनकाल से ही तत्त्वमीमांसा की अपनी महत्ता और प्रधानता बतायी गयी है। उपनिषदों की भाषा में इसे पराविद्या (उच्चतम ज्ञान) के रुप में प्रस्तुत किया गया है। मुण्डकोपनिषद इसे सर्वविद्या प्रतिष्ठा के नाम से संबोधित करता है। गीता में भी इसे अध्यात्मज्ञान या ईश्वरीय ज्ञान के रुप में देखा गया है। इस तरह तत्त्वमीमांसा का आज भी महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ॰ राधाकृष्णन भी इसे अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य बतलाते हैं।

जैन का द्रव्य संबंधी विचार काफी व्यापक और महत्वपूर्ण है। जैन दर्शन में जीव और अजीव को मुख्य द्रव्य के रुप में स्वीकार किया गया है। इसके अलावे जो द्रव्य हैं उनका महत्व भले

ही कम हो परन्तु ये ही जैन के अनेकवादी दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं। द्रव्यय में गुण और पर्याय दोनों ही होते हैं– ''गुणपर्यायवत् द्रव्यम्।''[5] गुण आवश्यक और नियत होते हैं। जबकि पर्याय परिवर्तनशील होते हैं। गुण के अभाव में द्रव्य की कल्पना नहीं की जा सकती है और इसी दृष्टिकोण से द्रव्य में नित्यता रहती है लेकिन पर्याय जो आकस्मिक गुण है परिवर्तनशील है। पर्याय के दृष्टिकोण से द्रव्य की उत्पत्ति और विनाश होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन दर्शन नित्यता और परिवर्तन दोनों में विश्वास करता है। जी0 एन0 जोशी [6] ने भी इस आशय का विचार व्यक्त किया है।

वस्तुतः जैन का सिद्धान्त भारतीय तर्कशास्त्र के इतिहास में बहुत दूर तक महत्व रखता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जैन के सिद्धान्त की प्रवृति या शुद्ध अर्थ का तत्वमीमांसा एवं धर्म के क्षेत्र में अनुसरण नहीं किया लेकिन यह सिद्धांत का दोष नहीं है। पर यह केवल जैन के दृष्टिकोण विस्तृत और निष्पक्षता का चिन्ह नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय में उनलोगों ने निर्णय के संबंध में अभिप्रायपूर्ण एवं यथार्थ प्रयास किया। जैसे कि प्रो0 भी0 एन0 बनर्जी ने कहा है– ''जैन के विरोधियों द्वारा उनके विरुद्ध उठाये गये आपत्तियों के बावजूद भी स्याद्वाद और सप्तभंगीनय का विशिष्ट तार्किक अभिप्राय है। यहाँ वे भाषा विश्लेषण के तत्त्व को भी देखते हैं और साथ ही विश्लेषणवादी महत्ता की ओर भी इंगित करते हैं।[7]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन का तत्त्वमीमांसयीय विचार केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि विश्लेषण के वर्तमान दृष्टिकोण से भी बेहद उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। भारतीय दर्शन के अंतर्गत वर्णित जैन का तत्त्वमीमांसीय विचार आज भी दर्शन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. एथिक्स एवं लैग्वेज, चार्ल्स एल0 स्टीवेन्सन, न्यू ह्वेन याले विश्वविद्यालय प्रेस, 1944
2. षड्दर्शन समुच्चय, कारिका – 49
3. तत्वार्थाधिगम सूत्र 1, 2–3
4. द क्वेस्ट ऑफ सर्टेनिटी जॉन डी0 वी0, न्यूयार्क मिन्टन वाच एवं कंपनी, 1929
5. तत्त्वार्थसूत्रम, 5/38
6. Joshi, G.N.: Indian Thought and Introduction, edited by Donald H. Bishp, Wiley Eastern Private Limited, New Delhi, p. 183
7. बनर्जी, ए0 वी0, दि स्प्रीट ऑफ इन्डियन फिलोसफी आरनॉल्ड– हिनेमन पब्लिशर्स न्यू देलही, 1974, पृ0 188